द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, मुमुक्षु की भूमिका सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

पहले तो (तत्त्व की) धारणा बराबर होनी चाहिए। लेकिन धारणा अंतर में उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धारणा में भी इधर का (आत्मा का) लक्ष्य होना चाहिए। धारणा स्वलक्ष्यी होनी चाहिए। स्वलक्ष्यी धारणा प्रयोग की उत्पादक होती है। और प्रयोगान्वित धारणा में धारण किया हुआ उपदेश जब अंतर में उतरता है तभी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। २४.

***

विकल्प से और मन से (परलक्ष्यीज्ञान में) किया हुआ निर्णय सच्चा नहीं। अपनी ओर दृष्टि को तादात्म्य करने पर ही अपने से किया हुआ निर्णय सच्चा होता है। पहले विकल्प से-अनुमान से (स्वलक्ष्यीज्ञान में) निर्णय हो, उसमें भी लक्ष्य तो अंतर में ढलने का ही होना चाहिए। ४९.

***

तीव्र प्यास (जिज्ञासा) लगनी चाहिए। प्यास लगे तो जैसे-तैसे बुझाने का प्रयत्न किये बिना रहे ही नहीं। ६४.

***

प्रश्न :- पक्के निर्णय बिना 'मैं शुद्ध हूँ', 'त्रिकाली हूँ', 'ध्रुव हूँ', ऐसे-ऐसे अनुभव का अभ्यास करें, तो अनुभव हो सकता है क्या?

उत्तर :- नहीं! पक्का निर्णय नहीं, लेकिन यथार्थ निर्णय कहो। यथार्थ निर्णय होनेके बाद ही निर्णय में पक्कापन होता है, फिर अनुभव होता है। ९२.

***

विकल्प की भूमिका में भी (जिसको) निर्णय नहीं होता, उसको निर्विकल्प निर्णय होने का अवकाश ही कहाँ है? ११८.

***

त्रिकाली का पक्ष करो! ऐसा (अपूर्व) पक्ष करो कि अनंतकाल में कभी हुआ न हो। वर्तमान का पक्ष छोड़ो। ३२८.

***

जिसको अपना सुख चाहिए उसे, अपना सुख जिनको प्रकटा है, उनके पास (सर्वार्पण बुद्धिपूर्वक शरण में) जाने का भाव आता है। ५०१.

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४८ः अंक-२८९, वर्ष-२४, जनवरी-२०२२

आषाढ़ कृष्ण १२, शुक्रवार, दि. १५-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८८, प्रवचन-३५

यह 'योगसार' शास्त्र है, योगीन्दुदेव मुनि। ८८ गाथा -

सम्माइट्ठी जीवडहँ दुग्गइगमणु ण होइ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि पुव्वक्किउ खवणेइ।।
८८।।

(सम्यग्दृष्टि खोटी गति में) जाए तो दोष नहीं, पूर्व का खिरता है - ऐसा कहते हैं। '**सम्यग्दृष्टि जीव का खोटी गतियों में गमन नहीं होता...**' क्योंकि अपना आत्मा शुद्ध अखण्ड निर्मल, निर्विकल्प, दृष्टि का आदर है। दृष्टि में अपने पूर्ण स्वभाव का आदर है; सम्पूर्ण संसार की अन्दर दृष्टि में उपेक्षा है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि '**दुग्गई-गमणु ण होइ**' उन्हें दुर्गतिगमन नहीं होता, क्योंकि अपना स्वभाव ज्ञायक चैतन्यस्वभाव सन्मुख की उपादेयता है और सम्पूर्ण संसार, विकल्प से लेकर सबकी उसे ग्रहण बुद्धि नहीं है... ग्रहणबुद्धि नहीं है और अपने शुद्ध स्वभाव की ग्रहणबुद्धि है। इस कारण से कदाचित् खोटी गति में जाए तो हानि नहीं है। वह तो '**पूर्वकृतकर्म का क्षय करता है।**' पूर्व का बाँधा हुआ कर्म है, उसका उसे नाश हो जाता है। समझ में आया?

'**आत्मा के शुद्धस्वरूप की गाढ़ रुचि, वह अतीन्द्रिय सुख से परम प्रेम रखनेवाला भव्य जीव को सम्यग्दृष्टि कहते हैं।**' पहले आनन्द से लेते हैं, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, अमृतस्वरूप है, आनन्द मुझमें ही है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाढ़ रुचि और परम प्रेम जिसे अन्तर आत्मा में हो गया, उसके पुण्य-पाप, उनका बन्धन और उनका फल, उसका प्रेम रुचि अन्तर से उड़ गयी है। समझ में आया? नाश हो गयी, रुचि नहीं है।

'**गाढ़ रुचि और अतीन्द्रिय सुख का परम प्रेम रखनेवाला...**' अपने आत्मा में ही अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तरस पड़ा है। मेरी शान्ति और आनन्द तीन काल-तीन लोक में कहीं मेरे अतिरिक्त, शुभभाव में भी मेरा आनन्द नहीं तो आदर किसका रहा? समझ में आया? परम गाढ़ रुचि... अपने निर्मालानन्द अनन्त गुण का प्रेम, उसमें आनन्द का प्रेम है तो समस्त गुण का प्रेम आ गया।

'**वह मोक्षनगर का पथिक बन जाता है।**' वह तो छूटने की दशा का पथिक है; बन्धन की दशा का पथिक नहीं है, क्योंकि आत्मा ही मुक्तस्वरूप है। राग, शरीर, कर्म से मुक्तस्वरूप है। ऐसे मुक्तस्वरूप की अन्तर रुचि, दृष्टि परिणति हो गयी तो उसे मोक्ष के पन्थ की ओर की ही उसकी पर्याय में गति है। आत्मा मोक्षस्वरूप है।

मुमुक्षु : कौन से गुणस्थान की बात है?

उत्तर : चौथे गुणस्थान की बात करते हैं।

मुमुक्षु : लोग तो सातवें में कहते हैं?

उत्तर : दुनिया चाहे जो कहे। पण्डितजी! यहाँ तो भगवान यह कहते हैं और ऐसा है। द्रव्य क्या चीज है? आत्मद्रव्य क्या है? आत्मद्रव्य अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि शुद्धस्वरूप का पिण्ड वह आत्मा, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। आत्मा राग, शरीर, कर्म से बँधा हुआ है? वस्तु, वस्तु बँधी हुई है? यदि वस्तु बँधे तो वस्तु का अभाव हो जाए। पर्याय में, एक समय की दशा में राग है तो जहाँ पर्यायबुद्धि गयी और वस्तु दृष्टि हुई तो वस्तु तो मुक्त है। वस्तु में बन्ध है? पदार्थ में बन्ध है? पदार्थ के बन्ध की व्याख्या क्या? पदार्थ बन्धन में है, इसका अर्थ कि पदार्थ है ही नहीं। (परन्तु) ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

पदार्थ शुद्ध ध्रुव चैतन्य शाश्वत् अनन्त आनन्द का सागर है, उसकी पर्याय में एक समय का राग है, राग में कर्म का निमित्त भी है, वह तो पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि में दिखता है परन्तु जहाँ सम्यग्दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि का भान हुआ, वस्तु अखण्ड ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि हुई तो द्रव्य तो मुक्त है। समझ में आया? मुक्त अर्थात् पर्याय में भी मुक्ति के - छूटने के पन्थ के मार्ग में वह है। सम्यग्दृष्टि बँधने के मार्ग में है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा, यह राग और कर्म का सम्बन्ध वस्तु में कहाँ है? सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो द्रव्य पर है। द्रव्य अर्थात् वस्तु, तो वस्तु तो पूर्ण मुक्त ही है। पूर्ण मुक्त की जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ राग और कर्म के निमित्त के बन्ध की पर्याय का ज्ञान रहा, आदर नहीं रहा। समझ में आया? यह भगवान आत्मा अपने पूर्णानन्द और ज्ञायकस्वभाव की प्रीति, गाढ.रुचि हुई तो स्वरूप मुक्त है तो पर्याय में भी मुक्त की दशा सन्मुख, मुक्ति के पन्थ में चला। यह मुक्ति में जाता है, अब मुक्ति में ही पर्याय जाती है। मुक्ति की ओर जाती है, बन्ध की ओर नहीं। ज़रा समझ में आया? ज़रा समझ में आया - ऐसा कहते हैं।

'**अतीन्द्रिय सुख का परम प्रेम रखनेवाला...**' मोक्षनगर का पथिक (बन जाता है)। नगर अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति; मुक्तदशा की ओर उसकी गति है; बन्धभाव की ओर गति नहीं। समझ में आया? आत्मा का स्वीकार होना चाहिए न? राग और कर्म निमित्तरूप होने पर भी, राग अवस्था में होने पर भी, वस्तु की दृष्टि करना और वस्तु में दृष्टि लगाकर सम्यक् परिणमन करना, वह तो दृष्टि का ज़ोर है न? राग और कर्म होने पर भी, मुझ में नहीं है। समझ में आया? ऐसी अपनी चैतन्य ज्ञायकभाव की, अतीन्द्रिय आनन्द की परम गाढ.रुचि जम गयी। बन्ध है, राग है, वह जानने योग्य है। जानने का प्रयोजन है, बस! इस तरफ दृष्टि गयी तो वह अन्दर छूटने के मार्ग का पथिक है। सम्यग्दृष्टि छूटने के मार्ग का पथिक है। आहा...हा...! यह स्वीकार कौन करे? समझ में आया? यह किसी को पूछने नहीं जाना पड़ता कि हे भगवान! मेरे कितने भव हैं? परन्तु मेरी चीज में भव ही नहीं हैं।

कल नहीं आया? भगवान आत्मा को भव का परिचय नहीं है, कलश में आया न? ठीक है। वस्तु पदार्थ, चैतन्य ज्योत अनन्त गुण का सार, रसकस - चीज को भव का भाव या भव का परिचय बिलकुल नहीं है। यह तो पर्याय के अंश में राग का, भव का परिचय है। पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि छूट गयी, स्वभावबुद्धि हुई - ऐसे स्वभाव में भव का परिचय, भगवान आत्मा में और आत्मा को है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी भव की शंका नहीं है - ऐसा कहते हैं। मैं निःशंक मुक्त

होनेवाला ही हूँ, अल्प काल में ही मेरी मुक्ति है, मैं अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करूँगा। मुझे दूसरी बात है ही नहीं। समझ में आया?

यह नि:सन्देहपना, नि:शंकपने का अनुभव तो अपनी दृष्टि का विषय हुआ। यह कोई बाहर की चीज है? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा.... अपना सम्पूर्ण धर्म, धर्म, सम्पूर्ण धर्मी को धर्म में धार लिया। दृष्टि में सम्पूर्ण आत्मा को धार लिया। सम्पूर्ण पूर्णानन्द प्रभु दृष्टि में आ गया। उसमें भव है ही नहीं, और भव के अभाव तरफ की पर्याय में गति हो गयी। नि:सन्देह हो गया, एक दो भव मेरे पुरुषार्थ की कमी है तो होंगे, तो वह राग के कारण से है, मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। मेरी स्वामित्व की चीज नहीं, वह मेरी चीज ही नहीं। सहजात्मस्वरूप पूर्णानन्द ही मेरी चीज और मैं उसका स्वामी हूँ। समझ में आया? आहा...हा...! सम्यग्दर्शन की महत्ता क्या! फिर थोड़ा लेंगे, 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में से दो गाथाएँ लेंगे।

वस्तु... एक समय की पर्याय में दोष है, एक समय की पर्याय में दोष है, वरना सम्पूर्ण आत्मा निर्दोष का पिण्ड है। अत: जब रुचि, एक समय के दोष के सम्बन्ध की रुचि छूट गयी, मेरे स्वभाव में यह एक समय का बन्ध है ही नहीं, स्वभाव में है ही नहीं। आहा...हा...! किसकी दृष्टि काम आयेगी वहाँ? भगवान के वचन वहाँ काम आयेंगे? अपने आप भगवान आत्मा नि:सन्देह होकर अपना शुद्धस्वभाव का दृष्टि में परिणमन हुआ तो कहते हैं कि, मोक्ष का ही पथिक है। गिर जाएगा तो? गिर जाने का प्रश्न कहाँ है? वस्तु कभी गिरती है? तो वस्तु की दृष्टि गिरने की कभी बात ही अन्दर में नहीं है। समझ में आया? और गिरने की शंका है, वहाँ द्रव्य की दृष्टि नहीं रहती। वह तो राग में आ गया, राग की एकत्वबुद्धि में आ गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरे जीवों की तुलना में दृष्टि का ज़ोर कोई अलग प्रकार का होता है।

उत्तर : वस्तु ही यह है। सम्यग्दर्शन, सर्व में... यह क्या कहा? पण्डितजी! 'कर्णधार' कहा है न? कर्ण शब्द है। कण्ठस्थ नहीं... मोक्षमार्ग में कर्णधार है। खेवटिया है, नाविक; सबमें नाविक - नाव चलानेवाला है। कर्णधार लिया है। समन्तभद्राचार्यदेव। सबका नाविक है। चैतन्य की पूरी नाव, स्वभावसन्मुख की धारा चलती है, (उसमें) सम्यग्दर्शन है, वह नाविक है, खेवटिया है। खेवटिया समझे? पार करने के लिए... ओ...हो...! रत्नकरण्डश्रावकाचार में बहुत कथन किया है। उसके जैसा उत्तम कोई पदार्थ नहीं है... सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं, उसके बिना चारित्र नहीं, उसके बिना कुछ है ही नहीं और सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ सर्वस्व हो गया। समझे?

'**वह मोक्षनगर का पथिक बन जाता है, संसार की तरफ पीठ रखता है...**' लो, इसका अर्थ क्या? कि विकल्प आदि की उपेक्षा ही रखता है, आहा...हा...! निर्विकल्प स्वभाव की अपेक्षा रखता है और विकल्प की उपेक्षा करता है, बस! यह वस्तुस्वरूप है। इसके ख्याल में आना चाहिए न? अन्तरदृष्टि में आना चाहिए न? ऐसे का ऐसे बोले तो कहीं पता नहीं खाता। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यपदार्थ, ज्ञायकभाव पूर्ण अमृत की, आनन्द की गाढ़ रुचि, गाढ़ रुचि। समझ में आया? जैसे मक्खी है, वह फिटकरी का स्वाद लेती है, फिटकरी होती है न? फिटकरी का स्वाद ले तो खारा लगता है, मिश्री की इतनी डली हो, इतनी (होवे उसकी) मिठास में ऐसी लग जाती है, ऐसी लग जाती है कि बालक खाते-खाते उसका हाथ लगाये, उसकी पंख मिश्री पर चिपक गयी होती है, (बालक का हाथ लगे) तो भी नहीं हटती... मिठास लग गयी है। फिटकरी की इतनी बड़ी डली हो और मिश्री की छोटी डली हो परन्तु ऐसी (मिठास) लगी है। समझ में आया? ऐसे ही आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का ढेर है। मक्खी जैसे चतुरिन्द्रिय प्राणी को भी मिठास लगे, वहाँ से रुचि नहीं हटती तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की बड़ा ढेर है।

'चाखे रस पूरण करे, छूटे सुरिजन, सुरिजन टोरि' समझ में आया? यह आनन्दघनजी कहते हैं। 'चाखे रस क्यों करि छूटे?' भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के दर्शन हुए, प्रतीति हुई, स्वाद आया, वह 'चाखे रस क्यों करि छूटे?' 'सुरिजन, सुरिजन टोरि' देवता की टोली आये और कहे, ऐसा नहीं... (तो यह कहता है कि) चल, चल! हमको जो अनुभव हुआ है, वह चीज अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया? 'सोहागन लागी अनुभव प्रीत' सोहागन... सोहागन कहते हैं न यह? पतिव्रता स्त्री को सोहागन (सुहागन) कहते हैं। पति हो न पति! उसे सौभाग्यवती कहते हैं। ऐसे 'सोहागन लागी अनुभव प्रीत' भगवान आत्मा, यह सुहागन प्रीत लगी। मस्तक पर स्वामी-आत्मा देखा। समझ में आया? यह 'आनन्दघनजी' ने लिखा है। कुछ समझ में आया?

'**संसार की तरफ पीठ रखता है, उसके भीतर आठ लक्षण या चिह्न प्रगट हो जाते हैं...**' यह ज़रा लिखते हैं। संवेग होता है। धर्म का प्रेम, धर्म का वेग। (१) संवेग - ज्ञानी को स्वभाव की ओर का वेग है। (२) निर्वेद - संसार की ओर उदास है। संवेग अस्ति है, (निर्वेद) वैराग्य है। समझ में आया? स्वभाव शुद्ध आत्मा की ओर का वेग, गति, वीर्य, रुचि अनुयायी वीर्य, रुचि अनुयायी वीर्य, शुद्धस्वभाव की रुचि हुई तो वीर्य, रुचि के अनुसार ही वीर्य गति करता है। इसका नाम संवेग कहते हैं। वैराग्य- संसार परिभोग, सम्पूर्ण संसार से वैराग्य, (आत्मा में) संवेग, यहाँ (निर्वेद) '**संसार की चारों गतियों में आकुलता है। यह शरीर कारागृह है, इन्द्रियों के भोग अतृप्तिकारक और नाशवन्त हैं।**' ऐसा वैराग्य है। वैराग्य, हाँ! द्वेष नहीं (कि) यह विषय ऐसे हैं, यह शरीर ऐसा है; वे तो ज्ञेय हैं। उस ओर का प्रेम है, वह छूट गया है और स्वभाव की ओर का प्रेम हो गया है।

(३) निन्दा - स्वयं को ज़रा राग आता है तो अन्तर में खेद (होता है कि) यह क्या? अरे...! यह क्या? देखो! समकिती को भोग भी होते हैं परन्तु उसमें निन्दा (करता) है। अरे! हमारी चीज में हम एकाकार होना चाहते हैं। उसमें यह क्या? निन्दा करता है।

(४) गर्हा - गुरु के समक्ष गर्हा करता है। समझ में आया? अपनी कमज़ोरी की निन्दा करता रहता है। देखो! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिया है, आत्मा का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ तो पर्याय में स्वयं को तुच्छ देखता है। अरे...! हमारी पर्याय बहुत अल्प है। कहाँ भगवान केवलज्ञानी की दशा, कहाँ सन्तों की चारित्र की रमणता की उग्र-उग्र स्वसंवेदन की दशा.... समझ में आया? यह पाँचवीं (गाथा में) लिया है न? प्रचुर स्वसंवेदन...। (समयसार में) कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, हम पर तो हमारे गुरु की कृपा हुई है। हमें गुरु ने उपदेश दिया, भगवान तू शुद्धात्मा है न! लो, सम्पूर्ण बारह अंग इसमें आ गये। हमारे गुरु ने हमें, सर्वज्ञ से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, अपरगुरु... यह पाँचवीं गाथा में आता है। वे सर्वज्ञ जो कि विज्ञानघन है और हमारे गुरु भी विज्ञानघन हैं। अल्प थोड़े ही हैं - ऐसा नहीं है। सभी विज्ञानघन लिया है - ऐसा संस्कृत में पाठ है। विज्ञानघन में मग्न है न? ऐसा लिया है। अन्तरमग्न, अन्तरनिमग्न - ऐसा पाठ है। अपर गुरु भगवान से लेकर हमारे गुरु विज्ञानघन में अन्तरनिमग्न हैं, वहाँ इतनी व्याख्या की। उन्होंने हम पर कृपा की, हमें उपदेश दिया। हमारी पात्रता थी - ऐसा नहीं लिया। ऐसा पाठ है। क्या (उपदेश) दिया?

भगवान! तू शुद्ध आत्मा है न! आहा...हा...! ऐसा उपदेश दिया और हमें प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ। मुनि है न! सम्यग्दृष्टि में स्वसंवेदन है, प्रचुर नहीं। मुनि है, चारित्रदशा है, प्रचुर स्वसंवेदन... प्रचुर स्वसंवेदन। ओ...हो...हो...! हमारे अनुभव से, हमारे वैभव से हम कहते हैं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि थोड़ा भी दोष होवे तो कमी दिखती है। अरे...! हमारी पर्याय पूर्ण केवलज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा होनी चाहिए, (उसमें) यह क्या? समझ में आया? ऐसी निन्दा (करता है)। उत्साह नहीं होता कि राग हो तो हो, भले हो - ऐसा नहीं। समझ में आया? परमात्मा शुद्ध चैतन्य की ओर का झुकाव

है, तो राग की ओर की निन्दा-गर्हा होती है - ऐसा उसका लक्षण है। समझ में आया?

(५) उपशम - '**आत्मानुभव के प्रताप से उसमें सहज शान्तभाव जागृत रहता है।**' उपशम की व्याख्या की है। अकषायपरिणति सदा जागृत रहती है, सदा अकषायभाव साक्षी की जागृति है।

(६) भक्ति - '**सम्यग्दृष्टि जीव को जिनेन्द्रदेव, निर्ग्रन्थगुरु और जिनवाणी की गाढ़ भक्ति होती है।**' शुभभाव है न? शुभभाव। '**स्तुति, वन्दना, पूजा और स्वाध्याय करता रहता है, उन्हें मोक्ष का सहकारी जानता है।**' मोक्ष में ये निमित्तरूप भाव हैं। यह शुभभाव निमित्तरूप सहकारी है, मेरा स्वभाव साधन है।

(७) वात्सल्य - '**साधर्मी भाई और बहिनों के प्रति...**' प्रेम है। '**धार्मिक प्रेम रखता है...**' धार्मिक के साथ की बात है न! उसमें क्या है? है? साधर्मी की विशेष दशा देखकर उसे द्वेष नहीं आता। (उसे ऐसा लगता है कि) ओ...हो...! मुझे भी उग्रता में जाना है, उन्हें उग्रता हो गयी। धन्य अवतार, भाई! ऐसा नहीं है कि हमारा शिष्य क्यों आगे बढ़ गया? उसे तो चार ज्ञान हो गये और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की तैयारी हो गयी। बहुत अच्छा, अलौकिक बात है! हमें जो चाहिए, वह उसे प्राप्त होता है, बहुत अच्छा (-ऐसा) प्रेम रखता है। साधर्मी के प्रति उसे (प्रेम आता है)। (अपने से) अधिक देखकर द्वेष नहीं आता। लोगों में तो अपने से अधिक पैसा देखे तो द्वेष आता है। अपने पास पाँच लाख, और इसके पास दस लाख (हो गये)। मलूकचन्दभाई! उनके पुत्र के पास एक करोड़, दो करोड़ हैं न! तो भी दूसरे के प्रति द्वेष आता है कि हमारे पास दो करोड़ और उनके पास पाँच करोड़! - ऐसा द्वेष आता है। यहाँ तो साधर्मी की विशेष गुण की दशा देखकर प्रेम आता है। ओ...हो...! धन्य अवतार!! समझ में आया? ऐसा प्रेम है। उसमें नहीं आया? 'न धर्मो धार्मिकै बिना' रत्नकरण्डश्रावकाचार.... धर्म कहीं धर्मी के बिना नहीं होता, धर्मी जीव के बिना धर्म नहीं होता तो जिसे धर्मी के प्रति प्रेम नहीं है, उसे धर्म के प्रति प्रेम नहीं है। रत्नकरण्डश्रावकाचार... आचार्यों ने तो वस्तु के स्वरूप का महाकथन ऐसी पद्धति से किया है। वात्सल्य है।

(८) अनुकम्पा - प्राणीमात्र के प्रति दया है। किसी के साथ '**अन्याय का व्यवहार नहीं करता।**' ऐसा लिया है। फिर लिया है (कि) सम्यग्दृष्टि को ४१ प्रकृतियों का बन्ध नहीं है। '**वह तो देवगति या मनुष्यगति में ही जन्म लेता है। यदि तिर्यञ्च या मनुष्य सम्यक्त्वी हुआ तो स्वर्ग का देव होता है। यदि नारकी व देव सम्यक्त्वी हुआ तो उत्तम मनुष्य होता है। सम्यक्त्व होने के पहले यदि मनुष्य या तिर्यंच की आयु बाँध ली हो तो भोगभूमि में तिर्यञ्च व मनुष्य जन्मता है। और जो नरक का आयुष्य बाँध लिया हो तो सम्यक्त्व सहित पहले नरक में जन्मता है। वहाँ भी समभाव से दुःख-सुख भोग लेता है। सम्यक्त्वी सदा सुखी रहता है।**'

बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तरसुख में गटागटी... लो, यह लोग कहते हैं, समकित अर्थात् श्रद्धा... ऐसा नहीं, भगवान! देखो! बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तरसुख में गटागटी... अन्दर आनन्द के प्रेम की अधिकता में उसे आनन्द है। जितना कषायभाव है, उतना दुःख है। इसकी गौणता करके स्वयं की अधिकता स्वभाव की ओर करता है। समझ में आया? (सम्यग्दृष्टि) मनुष्य, नरक में जाये तो भी सुखी है और मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में जाये तो भी दुःखी है। वह यहाँ कहते हैं। कहा है न?

'**सम्माइट्ठी-जीवडई, दुग्गई-गमणु ण होइ**'

और कदाचित् जाये तो क्या है? यह तो... जाता है... प्रति समय जड़कर्म की निर्जरा होती है और राग की अशुद्धता की भी निर्जरा होती है। 'निर्जरा अधिकार' में आया है न? भाव-अशुद्धि की भी निर्जरा होती है और द्रव्यकर्म की भी निर्जरा होती है। पहली गाथा में द्रव्यकर्म की निर्जरा कही, दूसरी गाथा में भावकर्म की

(निर्जरा) कही, प्रति क्षण अशुद्धता खिरती है और द्रव्यकर्म के रजकण भी खिरते हैं। स्वभाव तरफ की अधिकदशा है न? तो कहते हैं....।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है... दृष्टान्त दिया है। '**सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव व्रतरहित होने पर भी...**' लो! भगवान आत्मा, जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन सूर्य प्रगट हुआ, सम्यग्दर्शन रवि प्रगट हुआ... '**(वह) व्रतरहित होने पर भी ऐसे पाप नहीं बाँधता जिनसे वह नारकी हो...**' ऐसा पाप है नहीं। '**तिर्यंच हो, नपुंसक हो, स्त्री हो, नीचकुल में जन्म ले...**' अरे...! '**अंग हीन हो...**' ऐसा कर्म नहीं बाँधता। अपने पूर्ण परमात्मस्वभाव का दृष्टि में भान हुआ फिर बाहर में अंगहीन मिले - ऐसा पुण्य किसलिए बाँधेगा? समझ में आया? अल्प आयुवाला... हो ऐसा नहीं है और दरिद्री नहीं होता।

'**सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव ओज...**' ओज... ओज... ओजस्वी पराक्रमी दिखता है। हमाल (मजदूर) जैसा नहीं दिखता। अपने पुरुषार्थ का पराक्रम अन्दर से, हाँ! बाहर के पराक्रम की बात नहीं है। '**तेज...**' प्रताप, अन्तर प्रताप (होता है)। प्रभुत्व शक्ति खिली है न? प्रभुत्व शक्ति का अर्थ आचार्य अमृतचन्द्राचार्यदेव ने ऐसा (किया है कि) स्वतन्त्रता से शोभित अखण्ड प्रताप, जिसका प्रताप कोई खण्डित न कर सके (ऐसी) प्रभुत्वशक्ति आत्मा की है। ऐसे शक्तिवान का भान हुआ तो अपना प्रताप से दूसरे का प्रताप उसमें लागू नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया?

'**विद्या...**' देखो! सम्यग्दृष्टि अच्छी विद्या में उत्पन्न होता है, ओज लेकर गया है न! '**वीर्य...**' पुरुषार्थ... पुरुषार्थ-बल। '**यश...**' सम्यग्दृष्टि पुण्य बाँधे, उसमें यश ही होता है। क्या वह पापी है? समझ में आया? श्रेणिक (राजा) सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर नामकर्म बाँधकर गये हैं। बाहर निकलेंगे (फिर) तीर्थंकर (होंगे)। ओहो...हो...! माता के गर्भ में आने से पहले छह महीने पूर्व देव आयेंगे। अहो! माता! हे रत्नकूखधारिणी! रत्न को कूख में धरनेवाली माता-जननी, आपके गर्भ में भगवान आनेवाले हैं। बड़ा व्यक्ति आवे, तब पहले सफाई करने नहीं जाते? कोई मनुष्य आनेवाला हो तो दो घण्टे-चार घण्टे पहले जमीन साफ करते हैं, पानी का मटका भरते हैं, करते हैं या नहीं यहाँ? राजा आते हों तो सफाई करते हैं। मकान-बकान साफ करते हैं। ऐसे कोई आयेगा? तीन लोक का नाथ भले नरक में से आते हैं। आहा...हा...! माता! तुम्हारा गर्भ साफ करने आयेंगे। कौन आते हैं? त्रिलोकनाथ भगवान! इतना पुण्य! सम्यग्दर्शनसहित क्या नीच गति, हल्की गति में जायेगा और हल्की गति-नरक में गये तो भी कर्म की निर्जरा के कारण गये हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

'**वृद्धि...**' वृद्धि... वृद्धि...। उसे शुद्धि की वृद्धि ही होती है, बाह्य के पुण्य की भी वृद्धि होती है। '**और विजय प्राप्त करनेवाला...**' है। स्वयं की विजय है, हम कभी गिरनेवाले नहीं हैं, हमारी विजय है, हमारी विजय है, हमारी ध्वजा ऊपर है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' राजा की ध्वजा ऊपर होती है न? इसी प्रकार हमारी जय है, विजय है। राग की, कर्म की पराजय है। मूढ़ (ऐसा कहते हैं) ऐसे कर्म आते हैं, मुझे मार डालते हैं। मूर्ख...! कर्म में तू शक्ति मानता है और तुझमें शक्ति नहीं है? समझ में आया? वह तो परद्रव्य है, उसमें शक्ति (मानता है) अरे...! भगवान! ऐसा कर्म है.... मैं ऐसा पुरुषार्थ करूँ कि क्षण में केवलज्ञान प्राप्त करूँ - ऐसा क्यों नहीं लेता? समझ में आया? मेरे आत्मा में एक क्षण में ऐसा उग्ररूप से झुक जाऊँ कि सर्वज्ञपद (प्रगट हो जाये) सर्वज्ञपद पड़ा है, प्राप्त की प्राप्ति है। उसे ऐसी शंका नहीं होती कि मुझे कर्म आयेगा और अमुक आयेगा - ऐसी शंका धर्मी को नहीं होती, वृद्धि ही होती है। विजय प्राप्त (करनेवाला है)।

'**महाकुलवान...**' सम्यग्दृष्टि महाकुलवान में उत्पन्न होता है। हल्के कुल में (नहीं आता)। महाधनवान... बाद की बात है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद महाधनवान (होता है)। '**मनुष्यों में मुख्य होता है।**' यहाँ आत्मा को मुख्य किया तो बाहर में भी सबमें मुख्य क्यों नहीं होगा? ऐसा पुण्यानुबन्धी पुण्य बँध जाता है। कहो, समझ में आया?

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके वचनामृत-२५२ पर भाववाही प्रवचन, दि. २५-५-१९८३, प्रवचन क्रमांक-११० (विषय : मार्गदर्शन)

प्रश्न :- तत्त्वका श्रवण-मनन करने पर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

उत्तर :- सचमुच तो अन्तरमें रागके दुःखसे थकान लगी ही नहीं, अतः विश्रामका-शान्तिका स्थान हाथ ही नहीं आता। वास्तवमें अन्तरसे दुःखसे थकान लगे तो अन्तरमें उतरने पर विश्रामका स्थान हाथ लगे। सत्यके शोधकको सत्य न मिले-यह सम्भव ही नहीं। २५२

(२२-०० मिनट से)

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- क्षयोपशम में माने क्या है कि तत्त्वज्ञान का अभ्यास करनेवाला जीव हो और शास्त्र पढ़ते-पढ़ते उसका क्षयोपशम अधिक विकसीत होता हुआ उसे अनुभवगोचर हो, ज्ञात हो, तब उसका भी रस चढ़ता है। बहुत पढ़े, बहुत सुने, वक्ता हो तो बहुत बोले और लेखक हो तो बहुत लिखे।

मुमुक्षु :- श्रोता हो तो बहुत सुने।

पूज्य भाईश्री :- हाँ। और उसका उसे रस आये। तत्त्वज्ञान के विषय में इन्द्रियज्ञान की जो प्रवृत्ति हो, उसका उसे रस चढ़े। उसे अतीन्द्रिय ज्ञान का रस नहीं चढ़ेगा। रागरस है और वह इन्द्रियज्ञान का क्षयोपशम रस है। राग तो साथ में है ही। रागरस तो वहाँ वर्धमान हुआ ही है। क्योंकि वह तो बहिर्मुख ज्ञान है इसलिये राग उत्पन्न न हो और रागरस वर्धमान न हो ऐसा नहीं बनता। लेकिन वहाँ राग तीव्र नहीं होता। राग मंद रहता है और रागरस तीव्र होता है। तत्त्वज्ञान विषयक प्रवृत्ति होने से मंद राग होता है, कषाय मंद रहता है और रागरस तीव्र होता है। ऐसा ही बाह्य त्याग, संयम, व्रत, नियम में ऐसा है कि राग मंद होता है और रागरस तीव्र होता है। राग मंद रहे और क्रिया का रागरस तीव्र होता है। और क्षयोपशमज्ञान में भी उसको ऐसा लगे कि मेरा ज्ञान एवं मेरी बुद्धि बहुत बढ़ी है। उसका आधार लेकर रस चढ़े कि दूसरों को ऐसा विशाल ज्ञान नहीं है। मेरे पास जो शब्द-भण्डार है (उसके द्वारा) एक बात करने के लिये अनेक शब्दों से व्यक्त कर सकता हूँ। अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, उस विषय को सिद्ध करने के लिये अनेक प्रकार के तर्क दिये जा सकते हैं। उसका रस चढ़ता है, बुद्धि का रस चढ़े। लेकिन उसे बुद्धि से पार जो अतीन्द्रिय आत्मतत्त्व है उसके अतीन्द्रिय परिणमन का उसे रस नहीं आयेगा। वह दूर चला जायेगा।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- अन्दर का क्षयोपशम नहीं है, अन्दर का तो आत्मभाव है। क्षयोपशम है वह तो बाहर का बहिर्मुख भाव है। अन्दर जो सूझ आती है और स्वस्थान हाथ लगता है उसको क्षयोपशम नहीं कहते। क्षयोपशम तो बाहर में सब काम करे, वह क्षयोपशम है,

बाहर का क्षयोपशम है। अन्दर में तो वास्तव में उपशमभाव है। फिर, सम्यग्दृष्टि को क्षयोपशम श्रद्धान है, ज्ञान क्षयोपशम श्रद्धान है, चारित्र क्षयोपशमभावरूप होता है, वीर्य क्षयोपशमभावरूप होता है। उसे अन्दर का क्षयोपशम कहते हैं। परन्तु सामान्यतया प्रसिद्ध ऐसा है कि क्षयोपशम यानी बाहर का विषय।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- रस में तो सब गुणों के परिणाम हैं। जब रस कहने में आये तब उसमें तो सब गुण एक साथ, एक साथ लीन होते हैं रस के अन्दर। सर्व गुण निमग्न होते हैं। इसलिये ऐसा बताने के लिए ऐसा कहने में आता है कि उसे रस चढ़ा है। पूरा आत्मा उस ओर आ जाता है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सर्व गुण। सब गुण एक विषय में निमग्न हो तब उसे, उस विषय का रस चढ़ा है, रस आया है ऐसा कहने में आता है। वह रस विद्यमान है उसका उपलक्षण यह है कि उस रस के काल में उसका समय व्यतीत होता है यह उसे मालूम नहीं रहता। कितना समय व्यतीत हो जाता है। जैसे, कषाय की मंदता में बहुत काल व्यतीत हो जाये। पूरा आयुष्य पूर्ण हो जाये, मालूम नहीं पड़ता। तीव्र कषाय होनेपर दुःख बढ़े तब एक-एक क्षण व्यतीत होनी कठिन लगती है। कहते हैं न? वेदना में तो एक-एक क्षण बीतती नहीं है, बरसों जैसी लगती है। और कषाय की मंदता में उसे कितना काल व्यतीत हो जाता है यह मालूम नहीं रहता। क्योंकि उसमें उसको रस आता है। इसलिये उसे खबर नहीं रहती कि इसके अन्दर कितना समय व्यतीत होता है।

इस प्रकार अशुभ में भी तीव्र रस पड़ता है तब उसे खबर नहीं रहती। देवलोक में जो बड़े नाटक होते हैं वह नाटारंग ऐसे होते हैं। वहाँ तो सभी साधन दैवी हैं, यहाँ की भाँति गड़बड़वाले नहीं हैं। कभी बिगड़ जाये, कभी बिजली बंद हो जाये, कभी डोरी टूट जाये। वहाँ तो सब दैवी पुण्य अनुसार है। दस-दस हज़ार वर्ष तक नाटक चलते हैं। मालूम नहीं पड़ता दस हजार वर्ष कहाँ बीत गये। खाने-पीने की उपाधि नहीं होती। आहार-निहार की उपाधि नहीं होती। हज़ारों वर्ष नाटक में चले जाये। मालूम नहीं पड़ता। बस, उसको वह रस चढ़ता है। उसमें कितना समय बीत गया यह मालूम नहीं रहता। ऐसे सागरोपम के जो आयुष्य है, पल्योपम के आयुष्य हैं वह सब उसके अन्दर पूरा होने में देर नहीं लगती। छः महीने पहले उसे मालूम पड़ता है। माला मुरझाने लगती है। अन्यथा उसकी माला मुरझाती नहीं। फूल की माला होती है। यहाँ तो फूल सुबह-शाम मुरझा जाते हैं। सँभालना पड़ता है। वहाँ वह प्रकार नहीं है। परन्तु वहाँ उसे अविधज्ञान होता है (इसलिये) तुरन्त मालूम पड़ता है। छः महीने की अवधि का ख्याल आ जाता है। उपयोग रखता है। बस खलास। छः महीने तो कुछ भी नहीं है। पलकमात्र में पूरे हो जाते हैं। तब उसे अत्यंत आकुलता होती है। क्योंकि उस देव की पर्याय में जो उसने रस लिया है, वह संयोग उसे छोड़ना सुहाता नहीं। जैसे, यहाँ कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, पुत्री, ये-वो, कुछ छोड़ना सुहाता नहीं है, वैसे वहाँ भी उसकी जो भी सृष्टि उसने रची है, मान रखी है, अपनी दुनियामें से उसे छूटना सुहाता नहीं है। और अनिवार्यपने छूट जायेगा ऐसा उसे मालूम पड़ता है, इसलिये तीव्र दुःख में वह परिणमता है और एकेन्द्रिय आदि में चला जाता है। यह परिस्थिति है।

अन्यमतियों में ऐसा नियम होता है, अंधश्रद्धालुओं में। घर में चाहे जैसा विवाह-प्रसंग हो, चाहे जो भी काम हो। सुबह उसका जो नित्यक्रम होता है वह करना ही करना है। और घर के, कुटुम्ब के सब सदस्य जानते हैं। उसमें उसको कोई कुछ बोल नहीं सकता। वह करने के बाद ही सब करेगा। अतः एक छाप हो गई हो तो फिर उसे कोई कहता नहीं कि आप क्यों नहीं आये थे? भाई! अभी तो उसका यह करने का समय है। इस प्रकार एक नियम कर लेना चाहिये।

मुमुक्षु :- अपने में है। प्रक्षाल, पूजा किये बगैर कोई काम नहीं करता।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, करनें आता है। वह भगवान की प्रक्षाल, पूजा है। यह स्वाध्याय है वह आत्मा का प्रक्षाल है। शुद्धि-आत्मशुद्धि की यह प्रक्रिया है। वह प्रतिदिन नियमितरूप से, आहार भले ही न मिले, यह करना, करना और करना ही।

... क्षयोपशम ज्ञान का जिसे रस चढ़ा है उसे आत्मा का रस नहीं चढ़ेगा। इस ओर है, बायीं ओर बोल आता है।

मुमुक्षु :- २४१.

पूज्य भाईश्री :- २४१ में तो नहीं होगा। अभी नहीं चला है। वह तो राग की मीठास है। यह तो क्षयोपशम ज्ञान की बात है।

मुमुक्षु :- परसत्तावलंबी ज्ञान की मीठास जीव को मार डालती है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, परसत्तावलंबी ज्ञान कहो या क्षयोपशम ज्ञान कहो। है उसमें?

मुमुक्षु :- ... परलक्षी ज्ञान से आत्मा ज्ञात नहीं होगा।

पूज्य भाईश्री :- आत्मा तो ज्ञात नहीं होता। ये तो स्पष्ट शब्द हैं कि जिसे क्षयोपशम ज्ञान का रस चढ़ा है उसे आत्मा का रस नहीं चढ़ेगा। ऐसे ही गुरुदेव के शब्द हैं। एक्जेट ऐसे शब्द हैं। यह तो इतना ही दो-तीन पंक्तियों का वाक्य है। जिसे क्षयोपशम ज्ञान का रस चढ़ा है उसे अतीन्द्रिय आत्मा के ज्ञान का रस नहीं चढ़ेगा। ऐसी पद्धति से एकदम स्पष्ट बात आयी है। अभी हाथ में नहीं आ रहा है।

अब, इसमें कोई ऐसा विचार करे, चलते हुए मुद्दे पर विचार करें कि राग होता है और राग का दुःख भी नहीं लगता है। थकान लगने का प्रश्न तो बाद में है। बहुत दुःख लगे तब थकान लगती है। परन्तु राग होता है और राग का दुःख तो अन्दर में लगता नहीं। तो हमें क्या करना? ठीक! भाई! प्रश्न उठाना चाहिये कि नहीं? यहाँ इतनी बात आयी कि श्रवण-मनन करने पर भी, तत्त्व का अभ्यास करने पर भी, संक्षेपमें, सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है? तो गुरुदेवश्री ने उत्तर दिया कि अंतर से राग के दुःख की थकान लगनी चाहिये। कोई जीव अन्दर ज़रा देख ले, जाँच ले कि पूरा दिन राग होता है परन्तु उसका तो कोई दुःख नहीं लगता है। और थकान लगने का तो सवाल ही नहीं है। दुःख ही नहीं लगता है, फिर थकान लगने का सवाल नहीं है। और जहाँ रस हो, वहाँ थकान नहीं लगती। जब तक रस लंबाये तब तक थकान नहीं लगती।

पाँच साल का बच्चा हो। एक किलो वज़न उठाये, मुश्किल से उठा सके ऐसा हो फिर भी कहेगा, ना, वह थैली मुझे ही उठानी है। हठ करे। सब्जी लेने को साथ में ले जाते हैं न। सब्जी की थैली में एक किलो वज़न हो। मैं उठाऊँगा। लेकिन तू नहीं उठा सकेगा। अरे..! मैं उठाकर दौड़ूँगा। देखो, ये उठाकर भागा। थोड़ी दूर जाने के बाद खड़ा रह जाता है, थकान लगने से। वह थोड़ा चला उसका मतलब क्या हुआ? कि यह तो मुझे ही उठाना है। इस प्रकार उपाधि का बोज, रागरूप उपाधि का बोज रसपूर्वक जब तक उठाता है, तब तक उसे थकान नहीं लगती। थकान नहीं लगती उसका अर्थ यह होता है कि उसे रस आता है। यह बहुत प्रेक्टिकल साईड है इसकी।

कोई, इस उत्तर से अन्दर में विचार करे कि गुरुदेव ने ऐसा जवाब दिया कि थकान नहीं लगती है। तो नक्की कर कि तुझे रस आता है। इसमें हमें दो बात लेनी है। थोड़ा पृथ्थकरण करना है कि एक तो तुझे थकान नहीं लगती है उसका अर्थ कि रस आता है और तुझे दुःख नहीं लगता है उसका अर्थ यह कि दुःख होने के बावजूद तेरे ज्ञान के विपर्यास के कारण तुझे दुःख, दुःखरूप ज्ञात नहीं होता है। ऐसा है। जो रागादि परिणाम में दुःख ज्ञात होना चाहिये, वह दुःख है इसलिए दुःख लगना चाहिए, वह दुःख दुःखरूप ज्ञात नहीं होता, उसका अर्थ यह है कि उसका ज्ञान भी वहाँ रागरस से मैला हुआ मलिन ज्ञान है। दर्पण मैला हो तो उसमें प्रतिबिंब नहीं उठता। ऊपर मिट्टी लगी हो तो उसमें प्रतिबिंब नहीं उठता। साफ हो तो अन्दर प्रतिबिंब दिखे। वैसे रागरस मंद पड़े, राग नहीं, हाँ! राग तो मंद

अनन्त बार मंद पड़ा है, रागरस मंद पड़े और वह भी यथार्थ प्रकार से। यथार्थ प्रकार यानी आत्मा के हित के प्रयोजनपूर्वक। आत्मा के हित के लक्ष्य से यदि उसका रागरस मंद पड़े तो उसके ज्ञान में चालू (वर्ता) राग उसे दुःखरूप लगने लगे। ऐसा दुःखरूप लगता हुआ जा राग है वह लंबा चले तो उसे थकान लगे। दुःख लंबी देर चले तो उसमें वह थक जाता है। ऐसी थकान लगने जैसी स्थिति आये तो उसे अन्दर में जो ध्रुव आत्मा जो विश्रामस्थान है वह, उसे ज्ञान में ग्रहण हो। क्योंकि ज्ञान वहाँ स्पष्ट हुआ है। इस ओर राग दुःखरूप लगे और इस ओर उसे ज्ञानस्वभाव जो आत्मा है वह ऐसा है, ऐसा उसे भास्यमान होता है, ग्रहण होता है। अन्यथा अन्दर में उसे आत्मा का पत्ता नहीं लगता।

एक बार राजकोट में स्वाध्याय में प्रश्न उठाया था। ५-७ वर्ष पहले राजकोट जाना हुआ था। स्वाध्याय चला, कहा कि अपने यहाँ बहुत पुराना मंडल है। हम सब बुद्धिशाली लोग सुनते हैं, प्रत्यक्ष गुरुदेव को सुनते हैं। ऐसी अनुभवपूर्ण वाणी हमें मिलती है। बुद्धि भी हमारी बराबर समझ सके ऐसी तीक्ष्ण है, विशाल है तो फिर जैसा आत्मा गुरुदेव दर्शाते हैं ऐसा अन्दर में, ऐसा ही मैं हूँ, ऐसा क्यों नहीं आता, भासित नहीं होता? आता नहीं अर्थात् भासित नहीं होता, भासित नहीं होता? आता नहीं माने भासित नहीं होता। भासित नहीं होता यानी लगता नहीं। संक्षेप में अस्तित्व ग्रहण क्यों नहीं होता है? उसका कारण यह है कि रागरस आड़े आता है। यह बड़ी दीवार है। यह दीवार जब तक टूटेगी नहीं, तब तक उसके पीछे पर्दे में रहा जो आत्मा है वह भास्यमान नहीं हो सकेगा।

दूसरे प्रकार से, उसमें विपर्यास क्या है? कि राग में दुःख होने पर भी उसे सुख लगता है। यह भ्रांति है। ज्ञान का विपर्यास यानी भ्रांति। ज्ञान का विपर्यास सो भ्रांति। राग दुःखरूप होने पर भी उसे कोई-कोई राग सुखरूप वेदन में आता है, उसमें सुख लगता है। भ्रांतिगतरूप से लगा हुआ सुख, जब तक सुखरूप लगता है तब तक आत्मा भास्यमान होता नहीं। यह उसका नियम है, सिद्धांत है।

श्रीमद्जी तो वहाँ तक लिखते हैं कि आत्मा तो भास्यमान होता नहीं, अपितु उसे सत्संग का यानी सत्पुरुष के योग का माहात्म्य, वह भी यथार्थ प्रकार से भास्यमान नहीं होता। दो मुद्दे लिये हैं। कल ही वह बोल देखा था। पहले कभीकबार पढ़ा था। ३३१ पत्र है। '**भ्रांतिवश सुखस्वरूप भास्यमान होते हैं ऐसे इन संसारी प्रसंगों एवं प्रकारोंमें...**' शुभ और अशुभ दोनों। उसमें भ्रांतिवश सुख लगता है, भासित होता है। भासित होता है यानी लगता है। ऐसे अनेक उदय प्रसंग और प्रकार, उसमें '**जब तक जीवको प्रीति रहती है...**' मूल शब्द लिखते हैं, प्रीति रहती है अर्थात् मीठास वर्तती है यानी कि सुख लगता है। '**तब तक जीवको अपने स्वरूपका भास होना असंभव है,...**' इतना ही नहीं '**और सत्संगका माहात्म्य भी तथारूपतासे भासमान होना असंभव है।**' एक के बजाय दो बोल लिये हैं। उपादान में अपना उपादान जिस स्वरूप है उस स्वरूप भासित नहीं होगा। निमित्त में सत्संग है, वह जिस स्वरूप है उस स्वरूप भासित नहीं होगा। यह मेरे अनंत जन्म-मरण के नाश का निमित्त है ऐसा जो उसे माहात्म्य आना चाहिये, वह माहात्म्य उसे नहीं आयेगा।

अतः '**जब तक यह संसारगत प्रीति असंसारगत...**' अर्थात् आत्मा की मीठास में वह मीठास बदलकर नहीं चाली जाती, अर्थात् आत्महित में वह मीठास नहीं आती, '**तब तक अवश्य ही अप्रमत्तभावसे वारंवार पुरुषार्थको स्वीकार करना योग्य है।**' तब तक इस जीव को अवश्य पुरुषार्थ करना चाहिये, निश्चित ही पुरुषार्थ करना चाहिये ऐसा हमें लगता है। '**यह बात त्रिकालमें...**' सिद्धांतिक है ऐसा कहना है। '**विसंवादरहित जानकर...**' उसमें कोई विसंवाद का अवकाश नहीं है ऐसा जानकर '**निष्कामभावसे लिखी है।**' हमें इसमें कोई कारण नहीं है। निष्कामभाव से लिखी है। अन्दर में कोई इच्छा नहीं रखी। ऐसा कहने के पीछे हमारी कोई इच्छा नहीं

है। मात्र निस्पृहबुद्धि से मार्ग बताना है।

बहुत विचारणीय विषय यह है कि एक बात हमने यह ली कि राग का रस चढ़ता है तब तक थकान नहीं लगती। और स्वयं, राग में दुःख है या सुख है, यह जाँच करता नहीं है अर्थात् देखने को खड़ा नहीं रहता। यहाँ पर एक पुरुषार्थ का विषय आया न, उस पर से थोड़ा विचार लंबाता है कि पुरुषार्थ करना चाहिये, अवश्य पुरुषार्थ करना चाहिये माने क्या यहाँ? पुरुषार्थ करना चाहिये, इस भूमिका में पुरुषार्थ करना चाहिये, इस स्टेज में पुरुषार्थ करना चाहिये यानी क्या?

इस स्टेज में जो राग विद्यमान वर्तता है, उस राग में उसे दुःख है कि नहीं, यह बात जब तक उसे लगती नहीं तब तक उसके विश्लेषण में, जाँच में, उसके अवलोकन में उसे खड़े रहकर देखना चाहिये। ये क्या कहते हैं? राग दुःखरूप है और मुझे दुःख नहीं लगता है। ये भ्रांति? यहाँ मैं धोखा खाता हूँ? बाहर में कोई चार आना में धोखा खाये तो उसे जोश आ जाता है कि बारह आने का तरबूज़ (और) एक रूपया ले लिये मेरे से? ये बगलवाला बारह आने में बेचता है और इसने मुझे एक रूपया में दिया? चार आने का धोखा किया। उसमें जोश आता है।

यहाँ भ्राँति में क्षण-क्षण में दुःख में सुख की भ्राँति से धोखा खाता है उसको वह नहीं देखता, जाँचता नहीं, जाँचने को खड़ा तक नहीं रहता। इतना उसे राग का रस चढ़ा है। जब कोई दौड़ता है, तब दौड़ते-दौड़ते कोई बात की जाँच नहीं होती। इस प्रकार परिणाम में वेग हो, तब उस परिणाम को जाँच नहीं सकता। यह उसका एक नियम है। उसमें भी जब अपने परिणाम में रहे तत्त्व के तल की जाँच करनी हो तब तो उसे एकदम वेगमें से खड़े रह जाना चाहिये।

एक मनुष्य कहे कि मुझे प्यास लगी है। जब उसे प्यास लगी थी तब वह घोड़े पर सवार होकर दौड़ रहा था। घोड़े पर इसलिये भाग रहा था कि कहीं जलाशय हो तो उसे जल्दी पता चले। ऐसे में एक कूआँ एक ओर देखा। कूआँ देखा तो उसे द्विधा हुई कि यदि मैं भागते भागते आगे बढ़ूँगा तो, कहीं पर जलाशय होगा तो मुझे जल्दी मिलेगा। और इस कूएँ में पानी होगा या नहीं? नहीं होगा तो मेरा टाइम बिगड़ेगा और होगा तो मिल जायेगा। अब उसे क्या करना? कि देख भाई! तुझे वास्तव में पानी की गरज हो तो एक बार तो तुझे नीचे उतरकर तलवा देखना पड़ेगा। ऐसे तू राग की क्रिया में घोड़े पर सवार होकर जा रहा है - इतने शास्त्र पढ़ लूँ और इतनी क्रियाएँ कर लूँ। ऐसा कर दूँ और वैसा कर दूँ। इस प्रकार बाहर में घोड़े पर सवार होकर जा रहा है। लेकिन यहाँ कहते हैं कि, खड़ा रह, तू खड़ा रह। तेरे राग के अन्दर तलवा जाँच, उसमें दुःख है। उसमें मूल में दुःख है। जो हयात है, विद्यमान है, प्रगट है, अनुभवगोचर है ऐसा जो दुःख, हयात है कि नहीं? उसको तो तू देखता नहीं। वह स्थूल भाव है। दुःखभाव है वह तो स्थूल भाव है। जो स्थूल तत्त्व तुझे ज्ञान में आता नहीं, पकड़ में आता नहीं तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म ऐसा जो स्वभाव, आत्मस्वभाव तो तुझे कहाँ-से ग्रहण होगा? वह तुझे कोई प्रकार से ग्रहण नहीं होगा। अतः उसे क्या करना चाहिये?

सर्वप्रथम पुरुषार्थ यह है कि उसे राग में दुःख सहजरूप से लगना चाहिये और वह सहज न लगे तो उसे, वह दुःख क्यों नहीं लगता है उसकी जाँच करनी चाहिये। धीरा होकर पुरुषार्थ को वहाँ लगाना चाहिये, ज्ञान को उसे वहाँ जोड़ना चाहिये कि यह दुःख नहीं लगेगा तब तक आगे की कोई बात निश्चयनय और व्यवहारनय और विषय उसका ऐसा-वैसा, सब सीख ले और समझ ले, ऐसे पत्ता लगनेवाला नहीं है। वह कोई नयविवक्षा नहीं आती होगी, परन्तु यदि अन्दर में राग का दुःख लगा तो वहाँ से छूटकर आत्मा में आ जायेगा।

चीड़िया, मेंढक को होने का कारण क्या है? तिर्यंच दशा में रहे चीड़िया, मेंढक को सम्यग्दर्शन होता है, मन सहित मछली हो उसे सम्यग्दर्शन होता है, उसका कारण क्या? कि उसे राग का दुःख लगता है। दो तत्त्व हैं—राग और ज्ञान। राग में कषाय है इसलिये

दुःखभाव है और ज्ञान में कषाय का अभाव है, अकषायभाव है इसलिये उसमें सुख है। उसको सुख भी नहीं दिखता है और दुःख भी नहीं दिखता है। फिर चाहे जितनी माथापच्ची करे, लेकिन अन्दर में यहाँ प्रेक्टिकली जो विद्यमान भाव हैं, उसमें तो तेरी परीक्षा है नहीं। शास्त्र के अनेक प्रकार के अर्थघटन तू कर सके, उसका भावार्थ, नयार्थ सब कर सके और अन्दर में चलता हुआ राग और ज्ञान, उसके अन्दर सुख और दुःख तत्त्व मौजूद है यह तुझे मालूम पड़े नहीं, समझ में आये नहीं। कभी उसे पत्ता नहीं चलेगा। ऐसा विषय है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- यहाँ सीधा अन्दर से ही लेना पड़े ऐसा है। बाहर में वेग से दौड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है और बाहर की कोई धमाल करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। अन्दर में जम जा, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो अन्दर.. अन्दर.. अन्दर.. शब्द बार-बार लेते हैं गुरुदेव। अन्दर से राग के दुःख की थकान नहीं लगी है। अन्दर से दुःख की थकान लगे तो अन्दर में जाने पर विश्रामस्थान हाथ लगे। ऐसा है। अन्दर से-अन्दर से बात है।

शास्त्रीय के संगीत में बहुत लोग संगीत सीख लेते हैं ने। टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक में यह बात है कि, भाई! इस राग में इतनी मात्राएँ होती हैं, हरिगीत में इतनी मात्रा होती हैं, उपेन्द्रव्रजा में इतनी मात्रा होती हैं, शार्दूलविक्रीड़ित में इतनी होती हैं, मंदाक्रांता में इतनी होती हैं। सब सीख ले। परन्तु जब वह (राग) बजता हो, राग कोई गाता हो तो उसे समझ में न आये कि यह कौन-सा चलता है। तो वास्तव में वह सीखा है, फिर भी पहचान नहीं है। इस तरह राग में दुःख है ऐसा समझकर हाँ कही हो। यूँ ही सीख लिया हो, परन्तु चलते हुए राग में दुःख न लगे तो उसका सीखा हुआ निष्फल है। कहीं आगे जाने की आवश्यकता नहीं है। यह एक ऐसा बोल है। क्योंकि इस बोल में प्रश्नकार ने ऐसा प्रश्न उठाया है कि हम तो तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते हैं, तत्त्वज्ञान का श्रवण करते हैं, तत्त्वज्ञान का मनन करते हैं, तत्त्वज्ञान संबंधी शास्त्र वाचन करते हैं, फिर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता है? कि ये जो अंतरंग प्रवृत्ति है वह सब छूट गई है और बाह्य प्रवृत्ति में तू आगे बढ़ गया। सिर्फ आगे नहीं बढ़ा, तुझे उसका रस चढ़ गया। कहते हैं कि, भाई! तुझे शल्य हो जायेगा। ऐसा करते-करते मुझे हो जायेगा, ऐसा तुझे शल्य हो जायेगा अन्दर से। ऐसा विषय है।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि भाई! तू अन्दर में जाँच कर। तुझे दुःख लगना चाहिये। अन्दर जाने पर विश्रामस्थान हाथ लगता है। कब? कि दुःख लगता है तब। जब तक दुःख न लगे, तब तक दुःख के लिये उसकी जाँच चलनी चाहिये। वह पुरुषार्थ करना चाहिये।

'**सत्यके शोधकको सत्य न मिले-यह सम्भव ही नहीं।**' यह विषय ऐसा है कि सत्य है वह आत्मा के सत्य स्वरूप को यहाँ सत्य कहते हैं। सत्य यानी क्या? आत्मा का जो मूल स्वरूप, सत्य स्वरूप परमात्मपद है वह सत्य है। वह त्रिकाल सत्ता रखता है और इसीलिये उसे सत्य कहा है। वह अंतरंग तत्त्व है वह सदा ही अंतर खोज से प्राप्त होता है और चाहे जितनी बाह्य खोज कर ले, उससे वह प्राप्त नहीं होता। अनंत प्रकार से बाह्य खोज करे, उसे कभी प्राप्त नहीं होता। इसलिये ऐसा कहते हैं कि यदि कोई जीव अंतर खोज में जाये और वह बराबर अंतर खोज में लगे तो उसे सत्य प्राप्त न हो ऐसा बनता नहीं। उसे मिले, मिले और (अवश्य) मिले ही। ऐसा सिद्धांत है। यह भी एक सत्य है ऐसा कहना है। विशेष लेंगे...

***

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. ११-C

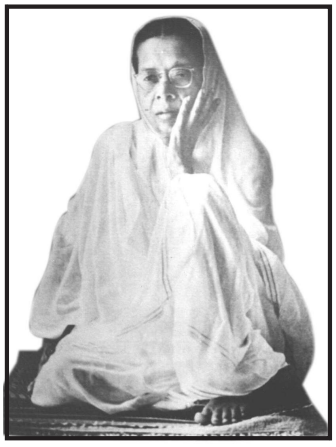

मुमुक्षु :- आज ही गुरुदेव के प्रवचन में आया था, एक आत्मा का ही अभ्यास करना, उसे ही सुनना, उसके ही विचार करना, उसका ही मनन करना। एक आत्मा का ही करना।

समाधान :- बराबर है, आत्मा को सुनना, उसका मनन करना, उसका श्रवण करना, उसका विचार करना, सब एक ही करना है। बाकी सब परसे दृष्टि छोड़ दे। एक आत्मा का ही अभ्यास किया करे। यदि तुझे वास्तविक (लगन) लगी हो तो उसका ही किया कर।

मुमुक्षु :- बीच-बीच में इधर-ऊधरके दूसरे सब विचार आते रहते हैं।

समाधान :- विचार आते रहे तो उसे पलट दे। विचार तो तेरी भूमिका है तो आते रहेंगे, उसे बदलता रह। तेरे विचारों को आत्मसन्मुख किया कर। आत्मा की श्रद्धा यथार्थ कैसे हो? तत्त्व का निर्णय कैसे हो? उस ओर सब विचार को बदलता रह। विचार तो आते रहेंगे अनादि का अभ्यास है इसलिये। उसे बदले बिना होनेवाला नहीं है। अपनेआप होनेवाला नहीं है। तेरी रुचि पर ओर है तो पर के विचार आयेंगे, तेरी रुचि स्व ओर जायेगी तो उस ओर के विचार आयेंगे।

मुमुक्षु :- आत्मा की ओर विचार बदलना, वह भी वास्तव में तो ज्ञायक स्वरूप का ही..

समाधान :- ज्ञायक की ओर ज्ञायक की ओर का ही अवलम्बन होता है। ज्ञायक की ओर के विचार होने चाहिये। आत्मा का प्रयोजन ज्ञायक कैसे प्रगट हो, ऐसा प्रयोजन होना चाहिये। उसीके विचार होने चाहिये। खुद श्रद्धा में कहीं रुकता हो तो उसके विचार (करे), खुद को ज्ञान में कुछ समझ में नहीं आता हो तो वैसे विचार (करे), जहाँ जिस प्रकारसे रुकता हो उस प्रकार के विचार (करे)। लेकिन ज्ञायक सम्बन्धित विचार करे।

मुमुक्षु :- वह सब ज्ञायक स्वरूप की ही अनुमोदना करते हैं।

समाधान :- हाँ, ज्ञायक स्वरूप का ही अनुमोदन करते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव के एक वचनामृत में है कि अनन्त गुणस्वरूप आत्मा, उसके एकरूप स्वरूप को दृष्टि में लेकर उस एक को ही ध्येय बनाकर उसमें एकाग्रता का प्रयत्न करना, वही सर्व प्रथम शान्ति का, सुख का उपाय है। तो माताजी! स्वरूप को दृष्टि में लेना और उसे ध्येय बनाना, इन दोनों में क्या अन्तर है?

समाधान :- स्वरूप को दृष्टि में लेना यानी तू बराबर उसकी श्रद्धा कर और तेरी दृष्टि में ग्रहण कर। द्रव्य पर की दृष्टि-श्रद्धा बराबर कर। उसे ही ध्येय बना। मेरा आत्मा ही मेरा ध्येय है। आत्मा को प्रगट करना वह (मेरा ध्येय है)। और द्रव्य को तेरी दृष्टि में ले। दृष्टि में बराबर यथार्थ श्रद्धा कर कि यही आत्मा है। इसप्रकार दृष्टि में ग्रहण कर, ध्येय भी उसे बना और उसमें ही एकाग्र हो।

मुमुक्षु :- माताजी! स्वरूप को दृष्टि में लेना तो दृष्टि का विषय स्वरूप हुआ और उस एक को ही ध्येय बना, तो ध्येय यानी उपयोग का विषय ध्येय हुआ, ऐसे लेना? ज्ञान का विषय भी उसे ही बनाया।

समाधान :- ज्ञान का विषय भी वह और दृष्टि का विषय भी वह एक ही है। ज्ञान सब जानता है लेकिन उसका ध्येय एक ज्ञायक ही है। दृष्टि का विषय भी एक ज्ञायक है। ज्ञान में भी एक ज्ञायक है और चारित्र में भी एक ज्ञायक है। एकाग्र भी उसी में हो।

मुमुक्षु :- माताजी! निश्चय मोक्षमार्ग में दृष्टि मुख्य वस्तु है और दृष्टि यथार्थ स्थापित हो अर्थात् अनुभव होनेसे पहले तत्त्व का यथार्थ निर्णय होनेपर, ज्ञायक को ध्येय बनाकर एकाग्र होने का प्रयत्न करे यानी कि यह ज्ञायक ही है ऐसे देखा करे तो उसे ध्यान प्रगट हो ऐसा है क्या?

समाधान :- ज्ञायक को ध्येय बनाये, ज्ञायक की श्रद्धा भी होनी चाहिए। ज्ञायक की निःशंकपने श्रद्धा करे कि यही ज्ञायक है, दूसरा कोई ज्ञायक नहीं है। यह विभाव परिणाम जो राग-द्वेष के शुभाशुभ विकल्प वह ज्ञायक नहीं है। ज्ञायक एक जाननेवाला (है) उस ज्ञायक की निःशंकपने श्रद्धा, उसकी श्रद्धा और ध्येय भी वह, करना यह ज्ञायक ही है। ज्ञायक को ज्ञायकपने प्रगट करना, बस, वह एक ही करना है। ऐसे बराबर श्रद्धा करके ध्येय में भी उसे लेना, फिर स्थिर भी उसमें ही होना। एकाग्र भी उसमें होना। मुख्य भले दृष्टि हो, ज्ञान में भी वह और एकाग्र-स्थिर भी उसमें होना। उसकी एकाग्रता, जो उपयोग बाहर जाता है उसे बारंबार स्वरूप में लीन करे, बारंबार स्थिर हो।

मुमुक्षु :- यथार्थ दृष्टिपूर्वक ज्ञान उपयोग में एक का ही लक्ष रहे तो उसमें एकाग्रता होने का प्रसंग बने?

समाधान :- एक को ही उपयोग में रखे तो एकाग्र होने का प्रसंग बने। एक को ही ध्येय में ले तो एकाग्र होने का प्रसंग बनता है। एक को ही ध्येय में लेना और एक में ही स्थिर होना। सब गुण परस्पर एकसाथ सहभावी हैं। एकसाथ हैं।

मुमुक्षु :- मुझे थोड़ी विशेष (स्पष्टता चाहिये), मेरा क्या कहना है कि दृष्टि का विषय तो तत्त्वका निर्णय आप जिसप्रकार कहते हो उसप्रकारसे निःशंक और निश्चित बराबर होना चाहिये, उसके सिवा तो उपयोग की एकाग्रता हो सकती नहीं, परन्तु तत्त्वका निर्णय निःशंकपने हो और ध्यान प्रगट करने हेतु एक ज्ञायक को ही विषय बनाता रहे कि यह ज्ञायक ही है, इसप्रकार देखता रहे तो उसमें एकाग्रता होने का प्रसंग बनता है?

समाधान :- ज्ञायक को देखा करे, ज्ञायक को जाना करे, देखा करे, उसमें एकाग्र होने का प्रसंग है। परन्तु उसके साथ ज्ञायक देखता रहे, ज्ञायक में लीनता-एकाग्रता करे। देखा करे या मात्र जानता रहे ऐसे नहीं, उसमें लीनता भी साथ में आ जाती है। तीनों आ जाते हैं। एकाग्रता का अर्थ यह है कि स्थिर हो जाना। आकुल-व्याकुल चित्त जो है, संकल्प-विकल्प में जो आकुल-व्याकुल चित्त हो रहा है, उस चित्त को ज्ञायक में स्थिर करता है। बस, ज्ञायक। आकुल-व्याकुल बाहर जा रहे चित्त को एकदम स्वरूप में स्थिर करता है, लीन करता है। पहले में देखने का आता है, इसमें स्थिर होने का-एकाग्र होने का आता है। परन्तु परस्पर सहभावी है और दोनों साथ आ जाते हैं।

मुमुक्षु :- एक को ही देखा करे तो उसमें एकाग्रता हो जाये?

समाधान :- उसमें एकाग्रता आ जाती है आ जाती है। एक को देखता है उसके साथ एकाग्रता आ जाती है। उसका बाहर देखना छूट गया, कम हो गया। स्वरूप को देखता है इसलिये स्वरूप में लीन हुआ। बाहर की लीनता कम हो गयी और स्वरूप में लीन हो गया।

मुमुक्षु :- वैसे तो तीनों एकसाथ ही हैं।

समाधान :- एकसाथ है, लेकिन उसके स्वभावमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। (श्रद्धा) श्रद्धा का कार्य करती है, जानना और यह स्थिर होने का कार्य करता है।

मुमुक्षु :- ज्ञायकको दृष्टि का विषय बनाने के बाद बाह्य पदार्थ, संयोगिक पदार्थ, नैमित्तिक पदार्थ या नैमित्तिक भाव होते रहते हैं। उसे ज्ञान क्या करता है? मात्र जानता है?

समाधान :- वे होते रहते हैं उसे ज्ञान जानता है कि मैं तो ये रहा, (मैं तो) ज्ञायक हूँ। ये सब हो रहा है। ज्ञान जानता है लेकिन यह अस्थिरता के कारण होते हैं, ऐसा भी ज्ञान जानता है। मेरी क्षति है इसलिये यह सब है। मेरा स्वभाव ज्ञायक है, मैं उसका कर्ता नहीं हूँ, स्वभावसे कर्ता नहीं हूँ। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा ज्ञान जानता है। लेकिन मेरी मन्दता, पुरुषार्थ की मन्दता के कारण यह होता है, ऐसा भी जानता है। वह बिलकुल जड़ में होते हैं ऐसा नहीं जानता। मेरी मन्दता है, मेरी ऐसी भूमिका है, उस कारणसे यह सब परिणाम होते रहते हैं, ऐसे जानता है।

मुमुक्षु :- ऐसे परिणाम बहुत होते हैं।

समाधान :- ज्ञान जानता है कि यह परिणाम मेरे पुरुषार्थ की मन्दतासे होते हैं, परन्तु आदरने योग्य तो एक स्वभाव ही है। इस स्वभाव में विभाव का एक अंश भी आदरणीय नहीं है। ऐसा उसे श्रद्धा का बल है। विभाव का एक भी अंश आत्मा के स्वभाव में, स्वभाव की अपेक्षासे आदरणीय नहीं है। आदरणीय नहीं है, परन्तु आता है। आदरणीय नहीं है। मैं ऐसा पुरुषार्थ कब करुँ कि यह सब छूट जाय, ऐसी उसे भावना रहती है। आकुलता नहीं करता है कि मेरे पुरुषार्थ की मन्दता है। लेकिन यह कब छूटे, ऐसी भावना भाता है। यह छूट जाय, बस, उसी की भावना है। एक अंश भी आदरणीय नहीं है। स्वभाव के सिवा ये कुछ आदरणीय नहीं है। देखता है कि होते हैं, मेरे पुरुषार्थ की मन्दता है। इसमें कुछ प्रकारे खिँचाव हो जाता है। मेरे स्वभाव की मर्यादा तोड़कर बाहर नहीं जाता, स्वभाव को खड़ा रखता है, लेकिन यह मेरे पुरुषार्थ की मन्दता है कि उपयोग इतना बाहर चला जाता है। पुरुषार्थ की मन्दता है। आदरणीय एक वीतरागदशा है। लेकिन यह खड़ा है, यह भूमिका है। आदरणीय नहीं है। अंतरसे उसे लगता है कि आदरणीय नहीं है, परन्तु होते हैं।

मुमुक्षु :- उसका छुटकारा ज्ञानी के वचनोंसे हो या स्वयं को ही करना पड़े?

समाधान :- स्वयं पुरुषार्थ करे तो होता है और ज्ञानी के वचनों का निमित्त होता है। ज्ञानी के वचनों का निमित्त तो होता है। क्योंकि स्वयं करे खुदसे, परन्तु निमित्त तो ज्ञानियों का होता है। जो पुरुषार्थ करके आगे बढ़े हैं, उनके वचनों का प्रबल निमित्त मुझे पुरुषार्थ उत्पन्न होने का कारण बनता है। उपादान स्वयं का है लेकिन निमित्त बनता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव के टेप प्रवचन में ऐसा लगता है कि साक्षात् गुरुदेव बोल रहे हैं। साक्षात् उनकी वाणी..

समाधान :- ऐसा ही लगे, हाँ, ऐसा ही लगे। टेप में साक्षात् वाणी जैसा लगता है। एकदम ऊँचेसे संबोधन, वह वाणी सब ऐसा ही लगता है। गुरुदेव ही बोल रहे हो। कोई आँख बन्द करके बैठा हो तो ऐसा ही लगता है कि गुरुदेव बोल रहे हैं, साक्षात्! ऐसा लगता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव की उपस्थिति नहीं है तो किसके कर्म का उदय गिना जाय?

समाधान :- उपस्थिति नहीं है। उदय तो है ही, उदय है वह तो दिखता ही है। किसके कर्मका यानी इस भरतक्षेत्र के सब जीवों का उदय, और किसका उदय? भाग्य था कि गुरुदेव मिले। ऐसी साक्षात् वाणी, साक्षात् वाणी बरसायी।

मुमुक्षु :- माताजी! ऐसी टप जो यहाँ चलती है वैसी कहीं और इतना सुन्दर..

समाधान :- नहीं चलता है। टेप, वह स्थान, उस टेप की गूँज सब ऐसा ही लगता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव की अतिशयता है?

समाधान :- वाणी में ऐसी अतिशयता ही थी। टेप में भी अतिशयता आयी है। गुरुदेव के वही शब्द कोई और बोले तो ऐसा (फीका) लगे.. और गुरुदेव उच्च स्वर में बोले उसका असर कुछ अलग होता है। वही दृष्टान्त गुरुदेव देते हो और वही दृष्टान्त दूसरे देते हो तो उस ज़ोर में और गूँज में कितना अन्तर हो जाता है।

मुमुक्षु :- टेप के अनुसार ही ये प्रवचन रत्नाकर के प्रवचन लिखे जाते हैं, उस अनुसार ही लिखा जाता है, फिर भी जैसा टेप में आता है वैसा उसमें नहीं आता।

समाधान :- वह तो लिखे गये हैं और ये गूँज जो आयी है वह सब उसमें आ गया है तो अन्तर तो पड़ता है न। वह तो लिखा गया है, उसमें वह गूँज कहाँ-से आये? वाणी नीकले तो एक बात को दृढ़ करने को कितनी ही बार कहते हो, अन्दर घुटन करते हो, वह सब श्रोता को असर होता है, वह सब अलग लगता है।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव को सुना नहीं हो परन्तु यह टेप सुनकर किसीको सम्यग्दर्शन हो सकता है?

समाधान :- साक्षात्से हो सकता है। टेप सुननेसे असर होता है। उसे कुछ पात्रता का कारण बने। पूर्वमें कोई तैयारी करके आया हो तो हो सकता है। लेकिन एकबार तो साक्षात् वाणी प्राप्त होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- श्रीमद्जी को और गुरुदेव को नैसर्गिक सम्यग्दर्शन या अधिगमज? श्रीमद्जी को भी सम्यग्दर्शन हुआ और गुरुदेवश्री को भी सम्यग्दर्शन हुआ तो उसे नैसर्गिक कहें या अधिगमज?

समाधान :- वर्तमान की अपेक्षासे नैसर्गिक। पूर्व में लेकर आये हो... वर्तमान में तो कोई मिला नहीं था। वर्तमान की अपेक्षासे नैसर्गिक। पूर्व के (संस्कार) लेकर आये थे।

***

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन अब गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। यह प्रवचन पूर्ण होने के बाद राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों का प्रारम्भ किया जायेगा। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी की ८९ वीं जन्म जयंती आनन्दोल्लासपूर्वक संपन्न

आत्मानुभव संपन्न परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाई की ८९वीं जन्म जयंती आनन्दोल्लास पूर्वक संपन्न हुई। इस प्रसंग पर मुंबई, कोलकाटा, अहमदाबाद इत्यादि शहरों से आकर मुमुक्षुओंने लाभ लिया। दि. १०-१२-२०२१ के दिन जिनमन्दिरजी से एक भव्य रथयात्रा का आयोजन किया गया था। जो शहर के प्रसिद्ध इलाकों से निकलकर जिन मन्दिरजी में समाप्त हुई।

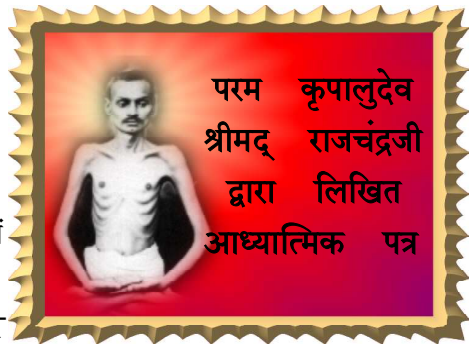

२८६

ववाणिया, आसोज सुदी १९४७

ॐ सत्

'हम परदेशी पंखी साधु, आ रे देशके नाहीं रे।'

परम पूज्य श्री सुभाग्य,

एक प्रश्नके सिवाय बाकीके प्रश्नोंका उत्तर जान बूझकर नहीं लिख सका।

'काल' क्या खाता है? इसका उत्तर तीन प्रकारसे लिखता हूँ-

सामान्य उपदेशमें काल क्या खाता है इसका उत्तर यह है कि 'वह प्राणीमात्रकी आयु खाता है।'

व्यवहारनयसे काल 'पुराना' खाता है।

निश्चयनयसे काल मात्र पदार्थका रूपांतर करता है, पर्यायांतर करता है।

अन्तिम दो उत्तर अधिक विचार करनेसे मेल खा सकेंगे। 'व्यवहारनयसे काल 'पुराना' खाता है' ऐसा जो लिखा है उसे फिर नीचे विशेष स्पष्ट किया है-

'काल 'पुराना' खाता है'-'पुराना' अर्थात् क्या? जो वस्तु एक समयमें उत्पन्न होकर दूसरे समयमें रहती है वह वस्तु पुरानी मानी जाती है। (ज्ञानीकी अपेक्षासे) उस वस्तुको तीसरे समयमें, चौथे समयमें, यों संख्यात, असंख्यात समयमें, अनन्त समयमें काल बदलता ही रहता है। दूसरे समयमें वह जैसी होती है, वैसी तीसरे समयमें नहीं होती। मतलब यह कि दूसरे समयमें पदार्थका जो स्वरूप था उसे खाकर तीसरे समयमें कालने पदार्थको दूसरा रूप दिया, अर्थात् पुरना वह खा गया। पहले समयमें पदार्थ उत्पन्न हुआ और उसी समय काल उसे खा जाये यों व्यवहारनयसे नहीं हो सकता। पहले समयमें पदार्थका नयापन माना जाता है; परन्तु उस समय काल उसे खा नहीं जाता, दूसरे समयमें उसे बदलता है, इसलिये पुरानेपनको वह खाता है, ऐसा कहा है।

निश्चयनयसे पदार्थ मात्र रूपांतरको ही प्राप्त होता है, कोई भी 'पदार्थ' किसी भी कालमें सर्वथा नाशको प्राप्त ही नहीं होता, ऐसा सिद्धांत है; और यदि पदार्थ सर्वथा नाशको प्राप्त हो जाता, तो आज कुछ भी न होता। इसलिये काल खाता नहीं, परंतु रूपांतर करता है, ऐसा कहा है। तीन प्रकारके उत्तरोंमें पहला उत्तर समझना 'सभीको' सुलभ है।

यहाँ भी दशाके प्रमाणमें बाह्य उपाधि विशेष है। आपने कितने ही व्यावहारिक (यद्यपि शास्त्रसंबंधी) प्रश्न इस बार लिखे थे; परंतु चित्त उसे पढ़नेमें भी अभी पूरा नहीं रहता, इसलिये उत्तर किस तरह लिखा जा सकता है?

***

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जनवरी-२०२२) का शुल्क श्रीमती मनीषा हेमंतभाई शाह, शांताक्रुज़, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।